© 2025 IJNRD | Volume 10, Issue 3 March 2025 | ISSN: 2456-4184 | IJNRD.ORG

IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आयुर्वेद विज्ञान: एक सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धति

कीर्ति
शोधच्छात्रा, संस्कृत
पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार, भारत

सारांश

परम्परागत रूप से आयुर्वेद मानव के स्वास्थ्य से लेकर आत्मिक उन्नति का मूल स्रोत रहा है। आयुर्वेद चिकित्सा जितनी सहज है उतनी ही वैज्ञानिक व सूक्ष्मतम भी है और यही आयुर्वेद की महत्ता है। जीवन के प्रत्येक पहलू को जोड़कर, आयु वृद्धि का आयुर्वेद एक जीवनदर्शन प्रदान करता है। दूसरी ओर भौतिक व पराभौतिक चिकित्सा द्वारा स्वयं में भौतिक विज्ञान की सीमाओं से परे मानव को जीवनीय सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करता है। यहां हम समझ व जान सकते हैं कि आयु- शरीर, इन्द्रियां, मन व आत्मा का संयुक्त नाम है और इसी आयु (शरीर, इन्द्रियां, मन व आत्मा) की वृद्धि के लिए आयुर्वेद का समस्त ज्ञान व चिकित्सा समर्पित है इसलिए आयुर्वेद सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धति का विज्ञान है।

कूटशब्द: आयुर्वेद चिकित्सा ,सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धति, आयु का विज्ञान, आयुर्वेद सिद्धांत, आयुर्वेद दर्शन, शरीर, इन्द्रियां, मन, आत्मा, दैवव्यपाश्रय, सत्त्वावजय, युक्तिव्यपाश्रय।

प्रस्तावना

आयुर्वेद आयु का विज्ञान है।[1] आयु का अर्थ है जीवन और वेद का अर्थ है विज्ञान, वेद शब्द विद् ज्ञाने धातु से निष्पन्न होता है। आयुर्वेद का मूल आधार वेद है जो मानव जाति की सर्वोत्तम सर्वप्रथम साहित्य रचना है। यह आयु का विज्ञान आयुर्वेद हमें शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान, जीवनविज्ञान, आहारविज्ञान, औषधविज्ञान एवं चिकित्साविज्ञान का सम्पूर्ण ज्ञान कराता है।

'सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात्

स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात् भावस्वभावनित्यत्वाच्च'।[2]

---

[1] आयुषो वेदम्- अष्टांगहृदय (सू.- 1.3)

[2] चरकसंहिता सूत्र.- 30.26

प्रथम आयुर्वेद की महत्ता उसके नित्य, शाश्वत होने से विदित होती है। आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है[3], दूसरा आयुर्वेद का शाश्वत होना, अनादि, सनातन होना तो स्वयं प्रकृति की नित्यता से सिद्ध लक्षण है और तीसरा औषधियों के गुणधर्म नित्य होने से आयुर्वेद की नित्यता स्वयंसिद्ध है।

यह शाश्वत ज्ञान ब्रह्मा से प्रजापति, प्रजापति से अश्विनी कुमार, अश्विनी कुमार से इंद्र, इन्द्र से भारद्वाज ऋषि तथा धनवन्तरी ने अध्ययन करके अन्य ऋषियों को दिया जिनमें पुनर्वसु, आत्रेय, अग्निवेश, भेल, जातुकर्ण, पाराशर, हारीत, क्षारपाणि, सुश्रुत, वाग्भट आदि ऋषि-महर्षियों ने वेदों में आयुर्वेद का गहन अध्ययन कर अनेकानेक शोध द्वारा संपूर्ण प्राणी जगत् के सुख-दु:ख व हिताहित को देखते हुए अनेक संहिता ग्रन्थों के रूप में हमें प्रदान किया।

आयुर्वेद का मूल प्रयोजन

आयु: कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेय: परमादर: ।।[4]

मानव के सभी इच्छित कार्यों, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति का मूल आरोग्य है । शरीर, इन्द्रियां, मन व आत्मा इन चारों के संयोग का नाम आयु है तथा आयु सम्बन्धी समस्त ज्ञान "आयुर्वेद" । आधुनिक चिकित्सा में व्यक्ति के भौतिक पक्षों को देखा जाता है, वहीं आयुर्वेद दृश्य जगत् पर ही केन्द्रित नहीं है बल्कि यह व्यक्ति के भौतिक (शरीर, इन्द्रियां व मन) व आध्यात्मिक (आत्मा) दोनों पहलुओं को परिष्कृत करता है । मानव के इहलोक (धर्म, अर्थ, काम) व परलोक (मोक्ष) को सिद्ध व प्राप्त कराने का साधन आयुर्वेद है । आयुर्वेद के ज्ञान से एक ओर व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा होती है वहीं दूसरी ओर रोगी को तन, मन से निरोगता प्रदान कर आत्मा के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया जाता है।[5] अत: जीव-जगत् की रक्षा व उत्तम स्वास्थ्य के लिए हर बालक-वृद्ध को आयुर्वेद का पठन-पाठन करना ही चाहिए ।

आयुर्वेद :- आयु (शरीर, इन्द्रियां, मन व आत्मा) का विज्ञान

शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम् ।

नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते।[6]

शरीर, इन्द्रियां, मन व आत्मा इन चारों के संयोग व इनके सम्पूर्ण ज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा व उन्नति का नाम ही आयु है । आयु के पर्यायों में धारण करने वाला होने से धारि, जीव प्राणधारणे से जीवतम् , नित्यं गच्छतीति नित्यग: (प्राणी में गतिशीलता का कारण आयु), अनुबध्नाति शरीरान्तराणि इति अनुबन्ध: (पर, अपर शरीरों से सम्बन्ध कराने वाला आयु) आदि नाम हैं।

सभी मनुष्य अपनी आयु (शरीर, इन्द्रियां, मन व आत्मा) से संयुक्त होकर ही जन्म लेते हैं। इस विषय पर जितना गहन चिंतन आयुर्वेद में किया गया है उतना अन्यत्र किसी चिकित्सा पद्धति में नहीं प्राप्त होता । हम सोच व विचार कर सकते हैं कि शरीर सहित इन्द्रियां, मन व आत्मा को आयुर्वेद में क्यों दर्शाया गया है ? इन्द्रियां, मन व आत्मा का क्या स्वरूप है ? आदि । इन सभी पहलुओं पर विचार करने के अनन्तर ही हम आयुर्वेद के मूल दर्शन को ठीक प्रकार समझ सकेंगे ।

[3] इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजा:, सुश्रुतसंहिता(सूत्र.1.3)

[4] अष्टांगहृदय (सूत्र.- 1.2)

[5] प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च। चरकसंहिता (सूत्र.-30.26)

[6] चरकसंहिता (सूत्र.-1.42)

शरीर-

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"[7]

आयुर्वेद से लेकर हमारी चिरंतन संस्कृति शरीर को धर्म का प्रधान साधन मानती है। वास्तव में शरीर की स्वस्थता के बिना किसी कर्म या जीवन की सुखपूर्ण कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए आयुर्वेद में शरीरविज्ञान (Physiology) पर गहन अनुसंधान किए गए जिसके फलस्वरूप आधुनिक चिकित्सा जगत् महर्षि सुश्रुत को शल्य चिकित्सा का गुरु स्वीकारता है। भारतीय दर्शनों में प्रकृति की उत्पत्ति सत्व, रज, तम से मानी गई है-

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारः, अहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राणि, उभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः,स्थूलभूतानि पुरुषः इति पञ्चविंशतिर्गणः ।[8]

आयुर्वेद में आयु संबंधी विज्ञान है इसीलिए यहां शरीर, इन्द्रियां, मन व आत्मा के अस्तित्व व रचना, क्रिया आदि का विस्तृत व सूक्ष्मतम विवेचन किया गया है । यह शरीर पञ्चभौतिक पदार्थों (आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी) का पिण्ड है ।[9] जिसमें पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता या पृथ्वी से उत्पन्न होने से इस देह को पार्थिव स्थूल शरीर कहा जाता है।

त्रिदोष सिद्धांत

पृथ्वी तत्व प्रधान इस पञ्चभौतिक शरीर में त्रिदोषों का स्वरूप कुछ इस प्रकार है । इसका विश्लेषण यहां देख सकते हैं-

वायुः पित्तं कफश्चेति शरीरो दोषसङ्ग्रहः[10]

त्रिदोष	महाभूत	कार्य
वात	आकाश+वायु	गति,संचार और संतुलन
पित्त	अग्नि+जल	पाचन, ऊर्जा उत्पादन और ताप संतुलन
कफ	पृथ्वी+जल	पोषण, स्थिरता और स्नेहन

वात, पित्त, कफ ये तीनों दोष मिलकर शरीर में सभी प्रकार के कार्यों को करते हैं और विकृत होने पर विविध रोगों का कारण बनते हैं। त्रिविध दोषों के बाद सूक्ष्म अध्ययन की दृष्टि से शरीर तीन प्रकार के कहे गए हैं- स्थूल शरीर (अन्नमयकोश), कारण शरीर (प्राणमय व मनोमयकोश), सूक्ष्म शरीर (आनन्दमयकोश)। इन तीन प्रकार से ही मानव शरीर स्थूल से सूक्ष्म की ओर यात्रा करता है।

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥[11]

अर्थात् आठ चक्रों (मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र, मनश्चक्र, सहस्रार चक्र) व नौ द्वारों (दो नेत्र, दो नासिका, दो कान, मुख, पायु और उपस्थ) वाली अयोध्या रूपी यह देह देवों की पुरी है, इसी देह रूपी नगरी में हिरण्य कोश

---

7 कुमारसम्भव- 5.33

8 सांख्यदर्शन-१.६१

9 इति भूतमयो देहः, अष्टांगहृदय (शा.-3.8)

10 अष्टांगहृदय (सूत्र-.1.57)

11 अथर्ववेद-10.2.31

अर्थात् सहस्त्रार चक्र है जो अनन्त, असीम, आनन्द एवं दिव्य तेज व प्रकाश से परिपूर्ण है। यह सभी चक्र भौतिक शरीर से संबंधित दिखते अवश्य हैं परन्तु इन चक्रों का संबन्ध शरीर की अतीन्द्रिय शक्तिकेन्द्रों से है। अथर्ववेद का यह मंत्र शरीर विज्ञान की अदृश्य ऊर्जा के केन्द्रों का भी सूक्ष्म गहन ज्ञान कराता है। व्यक्ति अपने शक्तिकेन्द्रों को जागृत करके रोग मुक्ति से लेकर आत्मशक्ति के पूर्ण विकास तक के प्रयोग को जानकर अनेक प्रकार की साधना, प्राणायाम, योग, औषधप्रयोग (सात्विक आहार व दिव्य औषध) आदि प्रक्रियाओं के द्वारा उच्चतम स्थिति को प्राप्त करता है। आज आधुनिक विज्ञान भी अष्टचक्रों की वैज्ञानिकता को अंगीकार करता है। शरीर निर्माण प्रक्रिया में प्राणों का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। शरीर में प्राणों की गति, स्थिति को वैज्ञानिक रूप से आयु का साधन बताया गया है। तदनन्तर शरीर में आहारादि क्रियाओं से धातुओं व विभिन्न शारीरिक अंगों को परिपुष्ट किया जाता है।

"देहधारणात् धातवः"[12] धातुएँ शरीर का निर्माण करती हैं। इस शरीर में रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र/रज यह सात धातुएं होती हैं।[13] ये शरीर के मौलिक ऊतक तत्व हैं जो शरीर का धारण और पोषण करते हैं। इन धातुओं का निर्माण भी पंचमहाभूतों के संयोग से होता है। धातुओं में विकृति व दोष होने पर शरीर में विविध प्रकार के रोगों व विकारों का जन्म होता है। इसी प्रकार शरीर के आन्तरिक अंगों में विविध अग्नियां, कलाएं, आशय, कोष्ठांग, स्थान, कण्डराएं, अस्थियां, स्नायु, मांसपेशियां, सिराएं आदि होती हैं। जिनका वर्णन कुछ इस प्रकार हैं -

मानव शरीर में 13 अग्नियां -

1. 1 जठराग्नि
2. 5 भूताग्नि- भौमाग्नि, आप्याग्नि, आग्नेयाग्नि, वायव्याग्नि, आकाशाग्नि।
3. 7 धात्वाग्नि- रसाग्नि, रक्ताग्नि, मांसाग्नि, मेदोऽग्नि, अस्थ्याग्नि, मज्जाग्नि, शुक्राग्नि/रजोऽग्नि

7 कलाएं- मांसधरा, रक्तधरा, मेदोधरा, श्लेष्धरा, पुरीषधरा, पित्तधरा, शुक्रधरा।[14]

7 आशय- रक्ताशय, कफाशय, अमाशय, पित्ताशय, पक्वाशय, वाताशय, मूत्राशय, स्त्री- गर्भाशय। यह पुरुष शरीर में 7 परंतु स्त्री शरीर में 8 होते हैं।[15]

11 कोष्ठांग- हृदय, क्लोम, फुफ्फुस, यकृत्, प्लीहा, उन्दुक, वृक्क, नाभि, डिम्बकोश, अन्त्र, बस्ति।[16]

10 प्राणस्थान- सिर, रसना, कण्ठ, रक्त, हृदय, नाभि, बस्ति, शुक्र, ओज, गुदा।[17]

इसके अतिरिक्त 16 जाल,16 कण्डराएं, 7 सीवनियां, 4 मांसरज्जु, 14 अस्थिसंघात,18 सीमन्त, 360 अस्थियां, 900 स्नायु, 500 मांसपेशियां, 10 सिराएं हैं[18] और इन्हीं पर वाणी, शरीर, मन व आत्मा का व्यापार आश्रित है।

---

12 चरकसंहिता (सूत्र.-28.4)

13 रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः। सप्त दूष्याः, अष्टांगहृदय (सूत्र-1.13), सुश्रुतसंहिता (चि.-5.21)

14 धात्वाशयान्तरक्लेदो विपक्वः स्वस्वमूष्मणा। श्लेष्मस्ताम्वपराच्छन्नः कलाख्यः काष्ठसारवत्। ताः सप्त, अष्टांगहृदय (शा.-3.9-10)

15 सप्त चाधारा रक्तस्याद्यः क्रमात् परे। कफामपित्तपक्वानां वायोर्मूत्रस्य च स्मृताः। गर्भाशयोऽष्टमः स्त्रीणां पित्तपक्वाशयान्तरे॥ अष्टांगहृदय (शा.-3.10-11)

16 कोष्ठाङ्गानि स्थितान्येषु हृदयं क्लोम फुप्फुसम्। यकृत्प्लीहोन्दुकं वृक्को नाभिडिम्भास्तबस्तयः॥अष्टांगहृदय (शा.-3.12)

17 दश जीवितधामानि शिरोरसनबन्धनम्। कण्ठोऽस्रं हृदयं नाभिर्बस्तिः शुक्रोजसी गुदम्॥ अष्टांगहृदय (शा.-3.13)

18 जालानि कण्डराश्चाङ्गेः पृथक् षोडश निर्दिशेत्। षट् कूर्चाः सप्त सीवन्यो मेड्रजिह्वाशिरोगताः॥
शस्त्रेण ताः परिहरेच्चतम्रो मांसरज्जवः। चतुर्दशास्थिसङ्घाताः, सीमन्ता द्विगुणा नव॥
अस्थ्नां शतानि षष्टिश्च त्रीणि दन्तनखैः सह। स्नाव्नां नवशतीपञ्च पुंसां पेशीशतानि तु।
अधिका विंशतिः स्त्रीणां योनिस्तनसमाश्रिताः। दश मूलसिरा हृत्स्थास्ताः सर्व सर्वतो वपुः॥अष्टांगहृदय (शा.-3.14-18)

त्रिदोष (वात, पित्त, कफ), अग्नि, धातु और मल जब शरीर में सही रूप से कार्य करते हैं तभी व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ रह सकता है। सम्पूर्ण शरीर चिकित्सा पद्धति को आयुर्वेद के आठ अंगों में से कायचिकित्सा तन्त्र व शल्यचिकित्सा तन्त्र में रखा गया है।

इन्द्रियां -

जिनके द्वारा मानव शरीर में ज्ञान का आदान-प्रदान होता है वे इन्द्रियां कहलाती हैं। आयुर्वेद में ज्ञानेन्द्रियों का विशिष्ट स्थान है।

"इह खलु पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चेन्द्रियद्रव्याणि पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानानि पञ्चेन्द्रियार्थाः पञ्चेन्द्रियबुद्धयो भवन्तीत्युक्तमिन्द्रियाधिकारे"[19]

आयुर्वेद में पांच इन्द्रियां, पांच इन्द्रियों के ग्राह्य द्रव्य, पांच इन्द्रियों के अधिष्ठान, पांच प्रकार के इन्द्रियों के अर्थ और पांच प्रकार का इन्द्रियों का ज्ञान अर्थात् बुद्धि मानी गई है।

इस प्रकार इन्द्रियां सूक्ष्म शक्ति रूप में होती हैं जो कि आकाशादि पंचभूतों से निर्मित होकर शरीर के श्रोत्रादि स्थानों में रहती हैं, जिसके द्वारा शब्दादि पांच विषयों को बुद्धि द्वारा जाना जाता है। इन्द्रियां मन के साथ संयुक्त होकर विषय को ग्रहण करने में सक्षम होती हैं।[20] शरीरत्याग के बाद सूक्ष्म इन्द्रियां ही आत्मा के साथ गमन करती हैं तथा योग साधनाओं में यही इन्द्रियां योगी को विभिन्न लोक व लोकान्तरों का ज्ञान प्राप्त कराती हैं इसलिए इन्द्रियों को व बुद्धि, मन तथा आत्मा को आयुर्वेद में आध्यात्मिक तत्त्वों में रखा गया है।[21]

इन्द्रियों में रोग का कारण-

इन्द्रियों में रोग का कारण विषयों से अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग को माना गया है जब इन्द्रियां मन के साथ संयुक्त होकर अपने-अपने विषय का अतियोग, अयोग तथा मिथ्यायोग करती हैं तब इन्द्रियां विकार या रोगयुक्त हो जाती हैं और जब इन्द्रियां अपने-अपने विषयों से समयोग करती हैं तो विषय का ठीक ज्ञान करने से वह स्वस्थ व रोगमुक्त रहती हैं।[22]

आयुर्वेद में इन्द्रियां कितनी विशेष हैं यह हम आयुर्वेद के आठ अंगों में से ऊर्ध्वांग तन्त्र चिकित्सा से समझ सकते हैं। इससे पूर्णतः ज्ञात होता है कि शरीर में इन्द्रियों की महत्ता व उनका स्वस्थ रहना आयुर्वेद में कितना महत्वपूर्ण है।

	इन्द्रियां	**इन्द्रिय-द्रव्य**	**इन्द्रिय-अधिष्ठान**	**इन्द्रिय-अर्थ**	**इन्द्रिय-बुद्धियां**
1.	श्रोत्र	आकाश	दो श्रोत्र	शब्द	श्रोत्रबुद्धि
2.	स्पर्शन	वायु	त्वचा	स्पर्श	स्पर्शबुद्धि
3.	चक्षु	अग्नि	दो नेत्र	रूप	चक्षुबुद्धि
4.	रसना	जल	जिह्वा	रस	रसनबुद्धि
5.	घ्राण	पृथ्वी	दो नाक	गन्ध	घ्राणबुद्धि

[19] चरकसंहिता (सूत्र.-8.3)

[20] मनः पुरःसराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानि भवन्ति ॥ चरकसंहिता (सूत्र.-8.7)

[21] मनो मनोऽर्थो बुद्धिरात्मा चेत्यध्यात्मद्रव्यगुणसङ्ग्रहः शुभाशुभप्रवृत्तिनिवृत्तिहेतुश्च, 'द्रव्याश्रितं च कर्म, यदुच्यते क्रियेति ॥ चरकसंहिता (सूत्र.-8.13)

[22] तदर्थातियोगायोगमिथ्यायोगात् समनस्कमिन्द्रियं विकृतिमापद्यमानं यथास्वं बुद्ध्युपघाताय सम्पद्यते, 'समयोगात् पुनः प्रकृतिमापद्यमानं यथास्वं बुद्धिमाप्याययति ॥ चरकसंहिता (सूत्र.-8.15)

मन-

अतीन्द्रियं पुनर्मन: सत्त्वसञ्ज्ञकं चेत् इत्याहुरेके तदर्थात्मसंपत्तदायत्तचेष्टं चेष्टाप्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम् ।[23]

मन को आयुर्वेद में अतीन्द्रिय, इन्द्रियों से न जाना जा सकने वाला सूक्ष्मतम तत्व कहा है। आयुर्वेदज्ञ मन को सत्त्व भी कहते हैं। मन का ही कार्य भेद से एक अन्य नाम चित्त भी है। मन अपने विषय और आत्मा की श्रेष्ठता के अधीन कार्य करता है और इन्द्रियों की क्रियाओं, व्यापार व प्रतीति का कारण भी मन ही है।

वेदों में विपुल ज्ञान का आश्रयस्थल सर्वव्यापक मनस् तत्व, मन (भौतिक जगत् का सूक्ष्म तत्व) को ही कहा गया है जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद अधिष्ठित हैं, वह मन है। यह सर्वव्यापक तत्व मन ही अनेकों सम्बन्धों व मनोजगत् तरंगों से जोड़े रखता है। जिस प्रकार दूरवाणी अर्थात् Phone की तरंगें सिग्नल रूप में जैसा आदेश दिया जाता है वैसा ही कार्य करती हैं उसी प्रकार मन भी विविध अदृश्य तरंगों, भावनाओं का अप्रतिम तन्त्र है। मन एक बार में एक ही कार्य करता है परन्तु मन की गति सर्वाधिक मानी गई है। **मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्**[24] अर्थात् मन की गति इतनी तीव्र है कि देवता भी उसकी गति को पकड़ नहीं सकते। अत: मन के विषय में जितना जाना जाए उतना कम है। इसलिए मन को स्थिर करना अत्यावश्यक है। मन की पवित्रता के बिना ज्ञान का प्रकाश नहीं होता अर्थात् ज्ञान होते हुए भी मनुष्य अज्ञानी बना रहता है इसलिए वेद में मन को शिवसंकल्पों से युक्त करने की प्रार्थना की गई है।[25]

मन के गुण व शक्तियां-

वेद में मन को ज्ञान का स्रोत कहा है। मन की उत्पत्ति मूलप्रकृति (सत्व, रज, तम) से हुई है इसलिए यह मन भी सत्व, रज, तम से युक्त है। मन की सत्त्व प्रधान अवस्था को स्वस्थ व उत्तम माना गया है इसलिए मन को सत्त्व कहा गया व सत्त्व से संबन्धित चिकित्सा को सत्त्वावजय। इन्हीं तीन गुणों के आधार पर मानसिक शक्तियां भी तीन होती हैं-

1. सात्विक- सात्विक मन में चैतन्यता, शुद्धता,पवित्रता, ज्ञान आदि लक्षण होते हैं।
2. राजसिक- राजसिक मन में चंचलता क्रोध आदि दुर्गुण अधिक कामनाओं की इच्छा आदि लक्षण होते हैं।
3. तामसिक- तामसिक मन आलस्य, अज्ञान, जड़ता, दीनता व मोह आदि लक्षणों से युक्त होता है।

मन के कार्य व रोग का कारण

"मनसस्तु चिन्त्यमर्थः, तत्र मनोबुद्धेश्च त एव समानातिहीनमिथ्यायोगाः प्रकृतिविकृतिहेतवो भवन्ति"[26]

मन का विषय चिंतन (संकल्प-विकल्प, चिंतन-मनन, सुख-दु:ख आदि) करना है। मन और बुद्धि का सामान योग स्वस्थता का कारण है और मन एवं बुद्धि का अतियोग, हीनयोग अथवा मिथ्यायोग विकार रोग का कारण है।

आयुर्वेद में शरीर के गुणों का प्रभाव मन पर तथा मन के गुणों का प्रभाव शरीर पर पड़ने से चिकित्सा की दृष्टि से रोगों को दो भागों में बांटा गया है-

1. शारीरिक चिकित्सा

[23] चरकसंहिता (सूत्र.-8.4)

[24] ईशावास्योपनिषद्- 4

[25] यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ यजुर्वेद- 40.5॥

[26] चरकसंहिता (सूत्र.-8.17)

2. मानसिक चिकित्सा

आत्मा-

निर्विकार: परस्त्वात्मा सत्त्वभूतगुणेन्द्रियै: । चैतन्ये कारणं नित्यो द्रष्टा पश्यति हि क्रिया: ॥[27]

आत्मा निर्विकार, पर अर्थात् भौतिक जगत् से परे है। मन, पञ्चभौतिक शरीर व इन्द्रियों में चेतना का कारण नित्य, अनादि, चेतन आत्मा ही है जो द्रष्टा होकर समस्त क्रियाओं को देखता है। आत्मा का आश्रय स्थल, आधार या साधन तो मन, इन्द्रियां व शरीर ही हैं। इन मन व शरीरादि के विकारयुक्त होने पर ये रोग का कारण बनते हैं। जिस प्रकार बिजली से बल्व प्रकाशित होता है उसी प्रकार आत्मा से यह शरीर क्रियान्वित व जीवन्त रहता है। जिस प्रकार बल्व का भौतिक पिण्ड बिना बिजली के एक व्यर्थ पदार्थ है उसी प्रकार यह शरीर भी बिना आत्मा के मिट्टी व पञ्चभूतों का पिण्ड ही है।

सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न व ज्ञान ये गुण आत्मा के हैं।[28] अर्थात् इन सभी सुख दु:खादि की अनुभूति व कर्मों का कारक एक मात्र आत्मा ही है। यदि शरीर में रोग पीड़ा है तो उस पीड़ा का कष्ट आत्मा को ही मिलता है और यदि सुख है तो वह भी आत्मा ही प्राप्त करता है। कहने व जानने का आशय यह है कि आत्मा के उद्देश्य व कर्मों में शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि माध्यम हैं, साधन मात्र हैं जो शरीर की सभी क्रियाओं का संदेश आत्मा को देते हैं, जिनमें आत्मा ही वह चेतन है जो अपनी चैतन्यता द्वारा सम्पूर्ण शरीर को जीवन्त रखता है।

कार्मिक रोग- शरीर में कुछ रोग आत्मा के कर्मों के आधार पर होते हैं तथा कुछ जन्म से और कुछ आनुवंशिक प्राप्त होते हैं। इन सभी का कारण आत्मा के पूर्वकर्म (पूर्वजन्म में किए गए कर्म) होते हैं। कुछ रोग वर्तमान कृत कर्मों का भी परिणाम होते हैं।

अत: आयुर्वेद आत्मोन्नति के लिए धर्माचरण पूर्वक अर्थ का अर्जन करते हुए काम को करने की दिशा दिखाता है। आयुर्वेद मात्र शरीर, मन ही नहीं समस्त लौकिक व पारलौकिक तत्त्वों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है इसलिए आयुर्वेद में आत्म तत्व की महती महत्ता है। पारलौकिक अर्थात् कार्मिक रोगों सम्बंधी चिकित्सा दैवव्यपाश्रय द्वारा की जाती है।

रोग का विभाग

आयुर्वेद में तीन प्रकार के रोग[29]-

निज- 'तत्र निजः शारीरदोषसमुत्थः'[30] जो रोग शरीर संबंधी वात, पित्त, कफ दोषों से उत्पन्न होते हैं, वे रोग निज रोगों में कहें जाते हैं। जैसे – वात- संधि विकार, पित्त- पाचन रोग, कफ- श्वसन रोग आदि।

आगंतुक- 'आगन्तुर्भूतविषवाय्वग्निसम्प्रहारादिसमुत्थ:'[31] आगंतुक अर्थात् बाहर से प्रवेश करने वाले जीवाणु, विषाणु व अन्य जीवों यथा भूतावेश द्वारा, विषप्रयोगज, विषाक्त वायु, अग्निदाहज, चोट, आघात आदि से होने वाले रोग इसके अंतर्गत आते हैं।

International Research Journal
Research Through Innovation

---

[27] चरकसंहिता (सूत्र.-1.56)

[28] इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगम् ॥न्यायादर्शन- 1.1.10॥

[29] त्रयो रोगा इति निजागन्तुकमानसा:। चरकसंहिता (सूत्र.-11.45)

[30] चरकसंहिता (सूत्र-11.45)

[31] चरकसंहिता (सूत्र-11.45)

मानस- 'मानसः पुनरिष्टस्यालाभाल्लाभाच्चानिष्टस्योपजायते'[32] मन के अनुकूल अर्थात् इच्छित की अप्राप्ति और अनिश्चित की प्राप्ति से होते हैं । मन का दु:खित होना ही अनेक मानसिक रोगों का कारण है । मानस दोष दो, रजोगुण व तमोगुण से माने गए हैं[33] यथा- अवसाद, उन्माद, स्मृतिलोप, अपस्मार । अन्य रजोभव रोग- क्रोध, हिंसा, अस्थिरता । तमोभव रोग- आलस्य, निराशा, निष्क्रियता आदि।

त्रिविध औषध चिकित्सा -

आयुर्वेद में तीन प्रकार की औषध चिकित्सा कही गई है -

त्रिविधमौषधमिति दैवव्यपाश्रयम्, युक्तिव्यपाश्रयम, सत्वावजयश्च ।[34]

1. **युक्तिव्यपाश्रय**[35]**-** युक्ति अर्थात् विविध चिकित्सा प्रयोगों व औषध द्रव्यों के युक्तियुक्त प्रयोग द्वारा शारीरिक रोग का उपाय करना युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा कहलाती है। यह औषध द्रव्य आधारित चिकित्सा है जो शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करती है । रोग और रोगी के बल, स्वरूप, अवस्था, स्वास्थ्य, सत्वादि प्रकृति के अनुसार औषध की उचित मात्रा, अनुकूल कल्पना (बनाने की रीति) आदि का विचार कर प्रयुक्त करना इसके अन्तर्गत आते हैं । तथा इसके अंतर्गत शरीर में रोगों के नाश के लिए विविध शोधन, शमन, स्नेहन प्रक्रियाओं तथा शल्यक्रिया आदि का समुचित प्रयोग किया जाता है । युक्तिव्यपाश्रय के मुख्यत: तीन भेद हैं[36] :
   1) **अंतःपरिमार्जन -** जो औषधीयां शरीर के भीतर जाकर अनुचित आहार विहार से उत्पन्न समस्त रोगों को दूर करती हैं वे अन्त: परिमार्जन (भीतरी शोधन) विधि कहलाती हैं। इसके अंतर्गत लंघन और बृंहण विधियां आती हैं।
      लंघन- जो चिकित्सा शरीर में लघुता प्रदान करे उसे लंघन चिकित्सा कहा जाता है । यह दो प्रकार से होती है- शोधन व शमन । **शोधन-** इसके अंतर्गत पंचकर्म (वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य, रक्तमोक्षण) चिकित्सा आती है । जो शरीर का आंतरिक शोधन कर दोषों का नाश करने में सहायक होती है। **शमन-** इसका प्रयोग दोषों को विसर्जित किए बिना ही शमन प्रक्रिया की जाती है । जिसके अन्तर्गत पिपासा निग्रह, आतप- मारुत सेवन, पाचन और दीपन, उपवास तथा शारीरिक व्यायाम आदि आते हैं।
      बृंहण - त्रिदोषों के अंतर्गत वात तथा वात-पित्त दोष के प्रकोप से पीड़ित व्यक्ति, क्षय, दुर्बलता, जरावस्था, अधिक कार्य और श्रमसाध्य कार्यों में रोगियों को बंहण चिकित्सा की आवश्यकता होती है । जिसके अंतर्गत शरीर की पुष्टि के लिए पौष्टिक आहार-विहार आदि का सेवन कराया जाता है।
   2) **बहिःपरिमार्जन-** जो औषधप्रयोग बाहरी त्वचा का आश्रय लेकर की जाती है जैसे- अभ्यंग, स्वेद, विविध लेप, परिषेक, उन्मर्दन आदि यह बाहर से किए जाने के कारण बहि:परिमार्जन (बाहरी शोधन) कहलाती हैं।
   3) **शस्त्रप्रणिधान-** छेदन, भेदन, व्यधन, दारण, लेखन, उत्पाटन, प्रच्छन, सीवन, ऐषण, क्षारप्रयोग, अग्निप्रयोग और जलौक प्रयोग आदि । यह किसी शस्त्र आदि के द्वारा किए जाने के कारण इस चिकित्सा को शस्त्रप्रणिधान कहते हैं।

International Research Journal
Research Through Innovation

32 चरकसंहिता (सूत्र-11.45)

33 मानस: पुनरुद्दिष्टो रजश्च तमएव च। अष्टांगहृदय (सूत्र.-1.57)

34 चरकसंहिता (सूत्र.-11.54)

35 युक्तिव्यपाश्रयं पुनराहारौषधद्रव्याणां योजना, चरकसंहिता (सूत्र.-11.54)

36 शरीरदोषप्रकोपे खलु शरीरमेवाश्रित्य प्रायशस्त्रिविधमौषधमिच्छन्ति अन्तःपरिमार्जनं बहिःपरिमार्जनं शस्त्रप्रणिधानं चेति । तत्रान्तःपरिमार्जनं यदन्तः शरीर मनुप्रविश्यौषधमाहारजातव्याधीन् प्रमाष्टि, यत्पुनर्बहिःस्पर्शमाश्रित्याभ्यङ्गस्वेदप्रदेहपरिषेखेकोन्मर्दनाद्यैरामयान् प्रमाष्टि तद्बहिःपरिमार्जनं,शस्त्रप्रणिधानं पुनश्छेदनभेदनव्यधनदारणलेखनोत्पाटनप्रच्छनसी वनैषणक्षाराग्निजलौकसश्चेति ॥ चरकसंहिता (सूत्र.-11.55)

2. **सत्त्वावजय**[37] – सत्त्व अर्थात् मन, अवजय यानि नियंत्रित करना । **मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः**[38] अर्थात् मन ही मनुष्य के बन्धन व मुक्ति का कारण है । मन के अनियंत्रित होने से ही मनोगत रोगों की उत्पत्ति होती है। मन व चित्त कार्यों की दृष्टि से ही दो नाम हैं। **योगश्चित्तवृत्तिनिरोध**:[39] अष्टांगयोग के द्वारा मन का निरोध किया जाता है। मानसिक रोगों को नियन्त्रित करने के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और संयम व तप द्वारा मन को एकाग्र करना तथा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक आहार-विहार, अहितकर इन्द्रिय विषयों से मन को रोकना 'सत्त्वावजय' चिकित्सा है।
3. **दैवव्यपाश्रय**[40]**-** यह चिकित्सा आत्म तत्व पर आश्रित है । हालांकि कुछ स्थानों पर इसे मानसिक रोगों की श्रेणी में रखा गया है परन्तु यह व्यक्ति के प्रारब्ध दोषों पर आधारित है या कह सकते हैं कि आत्मा के कर्मों में दोष ही इसका मुख्य कारण है। जो रोग दोषज ना होकर कर्मज होते हैं यथा- पूर्वजन्मकृत पापों से या भूतावेश, सिद्ध, ऋषि, देवता आदि के अपमान करने पर उनके शाप से उत्पन्न रोग इसके अंतर्गत आते हैं । उनकी शान्ति के लिए मन्त्र, औषध, माणि, मंगल, बलि, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास, प्रणिपात, तीर्थगमन, स्वस्त्ययन अर्थात् वेदमंत्रों का पाठ करना, देव-अर्चना आदि दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के अन्तर्गत आते हैं।

हालांकि दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का आधुनिक चिकित्सा में कोई स्थान नहीं है परन्तु हम विश्लेषण कर देख सकते हैं कि विविध रोगों का कारण व उपचार आज भी चिकित्सा जगत् की असमर्थता का कारण बना हुआ है । विविध मंत्र प्रयोगों का वैज्ञानिक स्वरूप तरंगों के माध्यम से व्यक्ति के ऊपर किस प्रकार प्रभाव डालता है यह शोध का विषय है । इसके अतिरिक्त हवन, यज्ञ का महत्व पर्यावरणीय व औषध चिकित्सा में सर्वोच्च है इसके साथ ही मन्त्रों के साथ यज्ञ का भावनात्मक प्रभाव जानने योग्य है । तीर्थगमन से व्यक्ति का विक्षिप्त मन व आत्मा, पवित्र, सुगन्धित वातावरण से व विविध पवित्र तरंगों, ऊर्जाओं से संयुक्त होकर शान्त व रोगमुक्त होता है । यम-नियम द्वारा आत्मिक रूप से व शारीरिक रूप से दृढ़ बनता है । आन्तरिक व बाहरी शुद्धि का यह सर्वोत्तम साधन है । दैवव्यपाश्रय का समझना आज के वर्तमान चिकित्सा जगत् के लिए अत्यावश्यक है ।

उपसंहार

इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान आत्म तत्व के विषय में भले ही शान्त हो परन्तु आत्म तत्व के बिना कोई भी चिकित्सा पूर्ण नहीं हो सकती । सुख-दु:ख की अनुभूति करने वाले आत्म तत्व की सत्ता को यदि चिकित्सा पद्धतियां स्वीकार नहीं करेंगी तो किसको दु:ख से दूर व स्वस्थ रखने की बात होगी ? केवल शरीर ही अन्तिम सत्य होता तो मानस रोग चिकित्सा के अनेकों रोगों पर औषध द्वारा ही कार्य हो सकता था, अन्य चिकित्सा विधियों की आवश्यकता ही न रहती । मानव की स्थूल इन्द्रियों से सब प्रत्यक्ष हो जाता तो वैज्ञानिकों को टेलीस्कोप, माइक्रोस्कोप आदि विविध यंत्रों की व ऋषि-महर्षियों को साधना द्वारा लोक-लोकान्तरों के ज्ञान की क्या आवश्यकता रहती। आयुर्वेद जिस प्रकार आयु (शरीर, इन्द्रियां, मन व आत्मा) के प्रत्येक तत्व के अनुसार विविध औषध चिकित्सा विधियों को लेकर चलता है उसकी महत्ता व वैज्ञानिकता को आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों को मानना व समझना होगा । आयुर्वेद नड़ीविज्ञान, स्वरविज्ञान, प्राणविज्ञान, आकृतिविज्ञान, रसविज्ञान, द्रव्यविज्ञान, मनोविज्ञान, आत्मविज्ञान का समाहित विज्ञान है। यह सम्पूर्ण तत्वों से लेकर सम्पूर्ण चिकित्सा की एक वैज्ञानिक पद्धति है । आयुर्वेद का सबसे महत्वपूर्ण गुण प्रकृति की मानव को देन है जो विविध कृत्रिम रसायनों के प्रयोगों से रहित है । इसका एकमात्र श्रेय आयुर्वेद के वर्गीकरण का वैज्ञानिक व सूक्ष्मतम होना ही है जिस पर आधुनिक जगत् व चिकित्सा जगत् को अनेक शोध व चिंतन- मनन करने की आवश्यकता है । अंततः आयुर्वेद एक सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धति है।

---

37 सत्त्वावजयः पुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रह, चरकसंहिता (सूत्र.-11.54)

38 अमृतबिन्दुपनिषद्-6.34

39 योगदर्शन-1.2

40 तत्र दैवव्यपाश्रयं-मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि-चरकसंहिता (सूत्र.-11.54)

संदर्भ ग्रंथ-सूची -

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती (2008) यजुर्वेदभाष्य, श्रद्धानंद अनुसंधान केंद्र, हरिद्वार।।
2. प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार (2013) अथर्ववेदभाष्य, वैदिक पुस्तकालय केसरगंज, अजमेर, राजस्थान।
3. डॉ. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार (2023) एकदशोपनिषद्, विजयकृष्ण लखनपाल,नई दिल्ली।
4. डॉ. केशव रामचन्द्र जोशी (2002) अमृतबिन्दूपनिषद् , सिद्धयोग संशोधन प्रतिष्ठान, पुणे।
5. स्वामी सत्यपति परिव्राजक (2003) योगदर्शन, द्वितीय संस्करण । दर्शनयोग महाविद्यालय रोजड़, गुजरात।
6. स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक (2018) सांख्यदर्शन, दर्शनयोग महाविद्यालय रोजड़, गुजरात।
7. स्वामी दर्शनानंद सरस्वती (1990) न्यायादर्शन, पुस्तक मंदिर, मथुरा, उत्तर प्रदेश।
8. हरिशास्त्री, पण्डित (2009)। अष्टाङ्गहृदयम्, षष्ठ संस्करण। वाराणसी, भारत: चौखम्भा संस्कृत. संस्थान।
9. त्रिपाठी, बी. एन. (2003)। अष्टाङ्गहृदयम्। देहली, भारत: चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान।
10. गौड, बी. एल.(2007)। अष्टाङ्गहृदयम्, प्रथम संस्करण। वाराणसी, भारत: चौखम्भा ऑरियन्टेलिया।
11. राव, बी. आर.(2009)। अष्टाङ्गहृदयम्, प्रथम संस्करण। वाराणसी, भारत: चौखम्भा विश्वभारती ऑरियेन्टेल पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्युटर्स।
12. बालकृष्ण, आ.(2014)। अष्टांगहृदयम्, हरिद्वार, भारत: दिव्य प्रकाशन
13. त्रिपाठी, बी. एन. एवं पाण्डेय, जी.एस.(2005)। चरकसंहिता। वाराणसी, भारत: चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन।
14. शर्मा, एस.(2007)। चरकसंहिता। मुम्बई, भारत: खेमराज श्री कृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस।
15. सिंह आर. एच(2011)। चरकसंहिता। वाराणसी, भारत: चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन।
16. शर्मा, पी.वी.(2011)। चरकसंहिता, द्वितीय संस्करण। देहली, भारत: चौखम्भा ऑरियन्टेलिया
17. घाणेकर, बी. जी. (1975) । सुश्रुतसंहिता, पञ्चम संस्करण। देहली, भारत: मोतीलाल बनारसीदास।
18. वैद्य, एल.एच.(1975)। सुश्रुतसंहिता, पञ्चम संस्करण देहली, भारत: मोतीलाल बनारसीदास ऑरियन्टेल पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्युटर्स।
19. शर्मा, पी. वी. (2005) । आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, आठवाँ संस्करण। वाराणसी, भारत: चौखम्भा ओरियन्टेलिया।
20. तर्कवाचस्पति, तारानाथ(1962)। वाचस्पत्यम्। वाराणसी, भारत: चौखम्भा संस्कृत सीरीज
21. मिश्र, एस.डी.(2005)। अमरकोष। राजस्थान, भारत: जगदीश संस्कृत पुस्तकालय।
22. अभिमन्यु, श्रीमन्नालाल(2005)। अमरकोष। वाराणसी, भारत: चौखम्भा विद्याभवन।
23. देवबहादुर, राधाकान्त (1987)। शब्दकल्पद्रुम(खण्ड1-5)। दिल्ली, भारत: नाग पब्लिशर्स।
24. श्री पंडित प्रद्युम्न पांडेय (2016) कुमारसम्भव, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी।